जैनदर्शन का कर्मविज्ञान

(महासती डॉ. सुप्रभाकुमारी 'सुधा')

जैनदर्शन में कर्म-विज्ञान के संबंध में पर्याप्त विश्लेषण किया गया है। जैनदर्शन में प्रतिपादित कर्म व्यवस्था का जैसा वैज्ञानिक रूप है, वैसा अन्य किसी भी भारतीय दर्शन में नहीं है। यद्यपि बौद्ध एवं वैदिक दर्शन में भी कर्म विज्ञान संबंधी विचार एवं विश्लेषण है किन्तु वह अत्यल्प है तथा उसका कोई विशिष्ट स्वतंत्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। इसके विपरीत जैनदर्शन में कर्म विज्ञान का अति सूक्ष्म सुव्यवस्थित एवं विस्तृत वर्णन है। यदि कर्म विज्ञान को जैनदर्शन साहित्य का हृदय कह दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

जैनदर्शन की भाँति अन्य दर्शनों में भी कर्म को स्वीकार किया गया है। वेदान्त दर्शन में माया, अविद्या और प्रकृति शब्दों का प्रयोग किया गया है। सांख्यदर्शन कर्म को ही प्रकृति कहता है। मीमांसा दर्शन में 'अपूर्व' शब्द प्रयुक्त हुआ है। बौद्ध दर्शन में 'वासना और अविज्ञप्ति' शब्दों से अभिहित करते हैं। न्याय और वैशेषिक दर्शन में 'अदृष्ट' संस्कार और धर्माधर्म शब्द विशेष रूप में प्रचलित हैं। दैव, भाग्य, पुण्य पाप आदि ऐसे अनेक शब्द हैं जिनका प्रयोग सामान्य रूप से, सभी दर्शनों में हुआ है।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक संसारी जीव कर्मों से आबद्ध है। भारतवर्ष दर्शनों की जन्म स्थली है, यहाँ पर अनेक दर्शनों ने जन्म लिया, उन दर्शनों में से एक लोकायत दर्शन के सिवाय सभी दर्शनों ने कर्म-विज्ञान को स्वीकार किया है। इस विराट-विश्व में विषमता, विचित्रता और विविधता जो दिखाई दे रही है, उसका मूल कर्म ही है। कर्म विज्ञान को समझने के लिए आत्मा का स्वरूप समझना आवश्यक है।

जैन दर्शन में आत्मा निर्मल तत्त्व है, शुद्ध सोना है। अपने मूल स्वरूप से सभी आत्माएँ शुद्ध हैं,[१] एक स्वरूप हैं।[२] अशुद्ध कोई नहीं है। जो अशुद्धता है, विरूपता है, भेद है, विभिन्नता है, वह सब विभाव से—पर्याय दृष्टि से है। जिस प्रकार जल में उष्णता बाहर के तेजस् पदार्थों के संयोग से उत्पन्न होती है, उसी प्रकार आत्मा में भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, सुख-दुःख आदि विरूपता-विभिन्नता बाहर से आती है। अन्दर में तो प्रत्येक आत्मा में चैतन्य का प्रकाश जगमगा रहा है।

वैदिक दर्शन में ब्रह्मत्त्व विशुद्ध है। कर्म के साहचर्य से वह मलिन होता है। किन्तु कर्म और आत्मा का संयोग कब हुआ? क्योंकि आदि मानने पर अनेक विसंगतियाँ उपस्थित हो जाती हैं।

महासती (डॉ.) सुप्रभाकुमारी

जैसे कि संबंध यदि सादि है तो पहले कौन? आत्मा या कर्म या दोनों का संबंध है? प्रथम तो पवित्र, निर्मल आत्मा कर्म बन्ध नहीं करती तथा दूसरे में कर्म कर्त्ता के अभाव में बनते नहीं हैं। तीसरे में युगपत् जन्म लेने वाले कोई भी पदार्थ परस्पर कर्ता, कर्म नहीं बन सकते। अत: कर्म और आत्मा का अनादि सम्बन्ध का सिद्धान्त अकाट्य है।

इसी विषय को स्पष्ट करने हेतु प्रसिद्ध विद्वान् हरिभद्रसूरि का एक सुन्दर उदाहरण है—

वर्तमान समय का अनुभव होता है फिर भी वर्तमान अनादि है, क्योंकि अतीत अनंत है। और कोई भी अतीत वर्तमान के बिना नहीं बना। फिर भी वर्तमान का प्रवाह कब से चला, इस प्रश्न के प्रत्युत्तर में अनादित्व ही अभिव्यक्त होता है। इसी भाँति आत्मा और कर्म का संबंध वैयक्तिक दृष्ट्या सादि होते हुए भी प्रवाह की दृष्टि से अनादि है, कर्म और आत्मा का सम्बन्ध स्वर्ण मृत्तिका की तरह अनादि सान्त है। अग्नि प्रयोग से स्वर्ण-मिट्टी को पृथक्-पृथक् किया जा सकता है, इसी प्रकार शुभ अनुष्ठानों से कर्म के अनादि सम्बन्ध को खण्डित कर आत्मा को शुद्ध किया जा सकता है।

जैन मान्यतानुसार जो जैसा करता है, वही उसका फल भोगता है। एक प्राणी दूसरे प्राणी के कर्म का अधिकारी नहीं हो सकता, जैसा कि कहा है—

"स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥"

उपर्युक्त तथ्य को ही उत्तराध्ययन सूत्र में इस प्रकार स्पष्ट किया है—

अप्पा कत्ता विकत्ताय, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पामित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपुट्ठिओ ॥

संसारी आत्मा सदैव कर्मयुक्त ही होता है। जब आत्मा कर्म से मुक्त हो जाता है, तब वह मुक्त आत्मा कहलाता है। कर्म आत्मा से मुक्त हो जाता है तब वह कर्म नहीं पुद्गल कहलाता है। कर्म के कर्तृत्व और भोक्तृत्व का संबंध आत्मा और पुद्गल की सम्मिश्रण की अवस्था में है।

[१] सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया – द्रव्य संग्रह ।
[२] एगे आया - स्थानांग सू. १ ।

धर्म अहिंसामय सदा, धर्म सत्य का धाम ।
जयन्तसेन अनादि से, चलता आया नाम ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा अपने आप में अनन्त शक्ति संपन्न है, जड़ भी शक्ति से संयुक्त है, दोनों स्वतंत्र तत्त्व हैं। आत्मा अपने सत् प्रयत्न के द्वारा अपनी अनंत शक्ति को अनावृत्त कर सकता है। परंतु जड़ की शक्ति को, पुद्गलों की ताकत को अपने रूप में कभी परिणत नहीं कर सकता, उसे परिवर्तित करने की शक्ति किसी भी आत्मा में नहीं है। इसी तरह पुद्गल आवरण से आत्म-शक्ति को धूमिल बना सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि आत्म शक्ति के समक्ष कर्म की ताकत नगण्य सी परिलक्षित होती है। आत्मा की शक्ति अनादिकाल से आत्मा में निहित है, आज भी है और भविष्य में भी उसका अस्तित्व विलुप्त नहीं होगा।

कर्म एक विजातीय तत्त्व है। आत्मा के साथ उसका बन्ध तब होता है, जब आत्मा स्वभाव से हटकर पर-भाव में रमण करता है, विभाव में परिणमन करता है। यही जैनदर्शन में कर्मविज्ञान का रहस्य है।

जब कोई आत्मा किसी तरह का संकल्प विकल्प करता है, तो उसी जाति की कार्मणवर्गणाएँ उस आत्मा के ऊपर एकत्रित हो जाती हैं, उसी को जैन परिभाषा में आस्रव कहते हैं और जब ये आत्मा से संबंधित हो जाती हैं तो इसी को जैन मान्यतानुसार बन्ध संज्ञा हो जाती है। जैन कर्म विज्ञान के अनुसार कर्म की आठ मूल प्रकृतियाँ हैं, जो प्राणी को विभिन्न प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल फल प्रदान करती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं— (१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र (८) और अन्तराय।[१]

नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणंतहा,
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउ कम्मं तहेवय ।
नाम कम्मं च गोयं च अन्तरायं तहेव य।
एवमेयाइं कम्माइं अट्ठेव उ समा से ओ ॥[२]

भारत के सुप्रसिद्ध जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों दर्शनों का समानरूप से यह सुनिश्चित सिद्धान्त है कि मानव जीवन का अंतिम साध्य उसके आध्यात्मिक विकास की परिपूर्णता और उससे प्राप्त होने वाला प्रतिभा—प्रकर्षजन्यपूर्णबोध अर्थात् परम कैवल्य या मोक्ष है। उसके प्राप्त करने में उक्त तीनो दर्शनों में जितने भी उपाय बतलाये गये हैं, उन सबका अन्तिम लक्ष्य सम्बन्ध समस्त कर्माणुओं को क्षीण करना। आत्म सम्बन्ध समस्त कर्मों के नाश का नाम ही मोक्ष है।[३]

दूसरे शब्दों में आत्म प्रदेशों के साथ कर्म पुद्गलों का जो संबंध है, उससे सर्वथा पृथक् हो जाना ही मोक्ष है। सम्पूर्ण कर्मों के क्षय का अर्थ है— पूर्व बद्ध कर्मों का विच्छेद और नवीन कर्मों के बन्ध का सर्वथा अभाव ।

'क्रियतेयत्तत्कर्म' अर्थात् मिथ्यात्व, राग, द्वेष आदि भावों के द्वारा संसारी जीव जिसे उपार्जित करते हैं, वह कर्म कहलाता है। सामान्यतया जीव जो क्रिया करता है, उसका नाम कर्म है।

१ (क) स्थानाङ्ग ८ ।३ ।५७६
२ (ख) प्रज्ञापना २३ ।१
३ कृत्स्न कर्म क्षमो मोक्षः (तत्त्वार्थ . अ. १० सू.इ.)

'कर्म' शब्द का लोक व्यवहार और शास्त्र में विभिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है। जन साधारण अपने-अपने काम-धन्धे व्यवसाय, कर्त्तव्य आदि के अर्थ में कर्म शब्द का प्रयोग करते हैं, किन्तु जैन-दर्शन में "कर्म" शब्द का विशेष अर्थ में प्रयोग किया गया है। उसके अनुसार संसारी जीव जब राग-द्वेषयुक्त, मन, वचन, काया से जो भी क्रिया करता है। उससे वह सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करता है और उनके द्वारा नाना प्रकार के आभ्यंतर संस्कारों को जन्म देता है। ये पुद्गल परमाणु भौतिक और जड़ होते हुए भी जीव की राग-द्वेषात्मक मानसिक, वाचिक, शारीरिक क्रियाओं के द्वारा अवकृष्ट होकर आत्मा के साथ अग्नि-लोह-पिण्ड की भाँति परस्पर एकमेक हो जाते हैं और आत्मा की अनन्त शक्ति को आच्छादित कर लेते हैं, जिससे उसका तेज हतप्रभ-मन्द हो जाता है। जब विशिष्ट साधना के द्वारा इन कर्म पुद्गलों को नष्ट कर दिया जाता है तब आत्मा पूर्ण स्वतंत्र और आनन्दमय बन जाती है। किन्तु कृत कर्मों का फल भोगे बिना आत्मा की मुक्ति नहीं हो सकती।

जीव कर्मों का बंध करने में स्वतंत्र है, परंतु उस कर्म का उदय होने पर भोगने में उसके अधीन हो जाता है। जैसे कोई पुरुष स्वेच्छा से वृक्ष पर तो चढ़ जाता है किन्तु प्रमाद वश नीचे गिरते समय परवश हो जाता है।[१] कहीं जीव कर्म के अधीन होते हैं तो कहीं कर्म जीव के अधीन होते हैं।[२]

जैन दर्शन में कर्म शब्द क्रिया का वाचक नहीं रहा है। उसके मतानुसार कर्म आत्मा पर लगे हुए सूक्ष्म पौद्गलिक पदार्थ का वाचक है। जीव अपने मन वचन और काय की प्रवृत्तियों के द्वारा कर्म-वर्गणा के पुद्गलों को आकर्षित करता है। मन, वचन और काय की प्रवृत्ति तभी होती है, जब जीव के साथ कर्म संबद्ध हो। जीव के साथ कर्म तभी संबद्ध होता है जब मन, वचन, काय की प्रवृत्ति हो। कर्म और प्रकृति के कार्य और कारण भाव को लक्ष्य में रखते हुए पुद्गल परमाणुओं के पिण्डरूप कर्म को द्रव्य कर्म कहा है और उसमें रहने वाली शक्ति या उनके निमित्त से होने वाले राग-द्वेष रूप विकार भाव कर्म हैं।[३] कर्मबन्ध वस्तु से नहीं, राग—द्वेष के अध्यवसाय से होता है।[४] जो अन्दर में राग-द्वेष रूप भाव कर्म नहीं करता उसे नए कर्म का बन्ध नहीं होता। जिस समय जीव जैसे भाव करता है, वह उस समय वैसे ही शुभ-अशुभ कर्मों का बंध करता है।

कुल मिलाकर जैन-दर्शन का कर्म-विज्ञान बताता है कि संसार का प्रत्येक प्राणी परतन्त्र है। यह पौद्गलिक शरीर ही उसकी परतंत्रता का द्योतक है, और पराधीनता कारण कर्म है। ●

१ कम्मं चिणंति सवसा ...... स परव्व सोतत्तो।
- समणसूत्रं, ज्योतिर्मुख, श्लोकांक ६०,
२ कर्मायितं फलं पुंसा, बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
– चाणक्य नीति १३/१०
३ कम्मत्त णेण एक्कं, दव्वं भावोन्ति होदि दुविहं तु।
पोगल पिंडो दव्वं, तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥
समणसूत्रं, ज्योतिर्मुख श्लोक नं. ६५
४ ण यव त्थुदो — अज्भव साणेण बंधोत्मि । – समयसार २६५

धर्म जगाता है नहीं, आपस में विखवाद ।
जयन्तसेन करे सदा, जीवन को आबाद ॥
Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org